Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

प्राचीन इतिहास की भारतीय ज्ञान परम्परा में शोध पाण्डुलिपि लेखन एवं उपकरण

भॅंवरलाल कुमावत
(राज्य स्तरीय पुरस्कृत शिक्षक)
प्रधानाध्यापक, मातु श्रीमती रुकमा भाई रणछोड़ सिह राजपुरोहित राजकीय बालिका प्राथमिक संस्कृत विद्यालय मोहराई जिला पाली (राजस्थान)

Article Info
Volume 4, Issue 5
Page Number : 46-54
Publication Issue :
September-October-2021
Article History
Accepted : 01 Sep 2021
Published : 09 Sep 2021

पाण्डुलिपियों के लेखन में दो वस्तुएँ नितान्त अपेक्षित हैं। प्रथमवस्तु तो है लेखन की आधार - सामग्री अर्थात् वह वस्तु जिस पर कोई लेख लिखा जाता है। जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि यह सामग्री पत्थर, मिट्टी, धातु, लकड़ी, वस्त्र, वृक्ष की छाल, वृक्ष का पत्र, पशुचर्म अथवा घास से बना कागज (पेपीरस) होता था। विश्व के विभिन्न भागों में इन्हीं आधारभूत पदार्थों पर अंकित अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इसका विकासक्रम तथा उपलब्धि - विषयक विवरण आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

पाण्डुलिपियाँ यद्यपि विश्व के अनेक राष्ट्रों में या तो प्राप्त हुई हैं अथवा कहीं और से प्राप्त करके सुरक्षित रखी गई हैं। परन्तु उनके बारे में कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जो अभी भी विद्वज्जनों की चिन्ता का विषय बनी हैं। उन समस्याओं को हम मुख्यत: चार रूपों में उपन्यस्त कर सकते हैं

(१) लिपि की समस्या।
(२) पाठालोचन।
(३) कालनिर्धारण तथा।
(४) शब्दार्थ की समस्या।

अभी भी अनेक ऐसी पाण्डुलिपियाँ हैं जिन्हें पढ़ा नहीं जा सका है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त हस्तलेखों का सम्यक् ज्ञान अभी भी नहीं हो सका है। उत्तरप्रदेश के इटावा नगर में यमुनातट पर स्थित खटखटा बाबा के आश्रम के ग्रंथागार में मैंने कई ऐसी पाण्डुलिपियाँ देखीं जो चित्रों में (चित्रलिपि) लिखी गई हैं। उन्हें समझना सर्वथा असंभव है। इसी प्रकार पाण्डुलिपियों के काल आदि का निर्धारण भी कठिन कार्य है।

वस्तुतः पाण्डुलिपि - लेखन का सम्पूर्ण विश्व में क्रमिक विकास हुआ है। यदि विश्व की विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होता है कि कहीं पाषाणलेख प्राचीनतम है तो कहीं चर्मलेख ! कहीं मृत्तिकालेख प्राचीनतम है तो कहीं पत्रलेख। कहीं तृणनिर्मित कागज के लेख प्राचीनतम हैं तो कहीं वृक्ष की छाल से बने त्वक् लेख।

पाण्डुलिपि - लेखन के आधार

परन्तु पाण्डुलिपि - विकास के अध्येताओं ने गहन छान - बीन के बाद हस्तलेखों के आधार (Base) को दृष्टि में रखकर यह निश्चय किया है कि सम्भवत: सर्वप्रथम गुहाभित्तियों के लेख अस्तित्व में आये होंगे।

भारतवर्ष में इस प्रकार के गुहाभित्ति - लेख अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं। मध्यप्रदेश के सरगुजा जिले में अम्बिकापुर नगर से प्राय: ३५ किमी दक्षिण में अवस्थित रामगढ़ की पर्वतश्रृंखला में एक इसी प्रकार की गुफा अंग्रेज विद्वान् जॉन बायर को मिली थी। इन्हें 'जोगीमारा' गुफा कहा जाता है। इनमें से एक गुफा को विश्व की प्राचीनतम नाट्यशाला होने का भी गौरव दिया जाता है क्योंकि इस गुहाद्वार के दोनो ओर

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

रन्ध्रबने हैं जिनमें संभवत: दण्ड स्थापित कर पर्दा लटकाया जाता था। मुख्य गुहा के दोनो ओर दो अलिन्द (बरामदे) भी हैं, संभवत: जिनमें अतिरिक्त पात्र खड़े रहते थे।

जोगीमारा की दूसरी गुफा संभवत: कविगोष्ठी के लिये बनी थी क्योंकि इसमें वर्तुलाकार परिधि में पत्थर को काट - काट कर आसन बनाये गये हैं कवियों को बैठने के लिये। इस गुफा की दीवार पर ब्राह्मीलिपि में एक पद्य अंकित है जिसमें कवियों की प्रशंसा की गई है। पद्य इस प्रकार है

आदिपयन्ति हृदयं सभावगरुका कवयो एतितयं।
दुले वसन्तिया हि सावानुभूते कुन्दस्ततं एवमालंगति ॥

इसी प्रकार नाट्यशालानुमा पहली गुफा की भित्ति पर भी एक लेख अंकित है जिसका तात्पर्य यह है कि वाराणसी से आये रूपदक्ष (अभिनेता) देवदत्त तथा नर्तकी सुतनुका की प्रणय - केलियों से कभी यह क्षेत्र अनुरंजित हो उठा था

सुतनुका नाम देवलासिक्यो तां कमयिथ।
वलुनसेये देवदिणे नाम लुवदिखे ॥

मध्यप्रदेश में ही भोपाल एवं होशंगाबाद के मध्यवर्ती वनों में प्रोफेसर वाकणकर ने भीमबेटका गुफाओं का अध्ययन किया था। जनश्रुति है कि अज्ञातवास के दिनों में पञ्च पाण्डव, माता कुन्ती के साथ इन्हीं गुफाओं में रहे थे। संभवत: इसीलिये स्थानीय भाषा में इन गुफाओं को 'भीम का बैठका' कहा जाता है। इन गुहाभित्तियों पर भी ढेर सारे चित्र एवं आलेख अंकित किये गये हैं।

गुहाभित्तियों के उदाहरण मयसंस्कृति (मेक्सिको) में भी मिलते हैं जहाँ कभी इन्का जातीय सभ्यता विकसित हुई थी।

गुहाभित्तियों के अनन्तर पाषाण अथवा शिलालेखों का विकास हुआ। ये पाषाण - लेख चपटी प्रस्तर शिलाओं पर (जो अभी भी अपने मूल पर्वत से जुड़ी हैं) अथवा काटकर अलग की गई प्रस्तरशिलाओं एवं गढे गये पाषाण - स्तम्भों पर विद्यमान हैं। सम्राट अशोक ने सर्वप्रथम समाजोपयोगी धर्मदेशनायें इस प्रकार की प्रस्तर - शिलाओं एवं स्तम्भों पर लिखवाई। ये शिलालेख गान्धार (अफगानिस्तान) से खेकर सुदूर दक्षिण - पश्चिम भारत तक उपलब्ध हैं जिनमें प्रमुख हैं कालसी (देहरादून) शहबाजगढ़, मानसेहरा, लौरिया नन्दनगढ़, साँची, नालन्दा आदि।

लेखयुक्त अशोकस्तम्भ भी सम्प्रति इलाहाबाद, वाराणसी (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय - प्रांगण तथा सारनाथ) आदि स्थानों पर उपलब्ध हैं जिन पर कालान्तर में अन्यान्य भूपतियों ने भी अपनी प्रशस्तियाँ लिखवाईं। सम्राट रूद्रदामन् का गिरनार शिलालेख (१५० ई०) तथा खारवेल का हाथीगुम्फा लेख (भुवनेश्वर, उड़ीसा) भी पर्वतांशों पर ही लिखा गया है। गढ़ी गई पाषाणशिलाओं पर लिखे गये शिलालेख तो हजारों की संख्या में हैं जिन्हें मन्दिरों में स्थापित किया गया हैं। वत्सभट्टि का मन्दसौर शिलालेख, रविकीर्ति का ऐहोल शिलालेख, खजुराहो के मन्दिरों में विद्यमान गण्डदेव के शिलालेख तथा महेन्द्रपाल, महीपाल, भोजदेव आदि की शिलांकित प्रशस्तियाँ भी इसी क्रम में आती हैं।

मिट्टी की ईंट पर भी लिखने की परम्परा पाषाणलेख के बाद आई होगी। वर्तमान इण्डोनेशिया के बालीद्वीप में तथा मलेशिया में इसी प्रकार के मृत्तिकाफलकों (Clay - tablet) पर बौद्धधर्म की देशनायें (धम्मपद) आदि लिखी मिलती हैं जो आज भी वहाँ के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। वर्तमान मलेशिया, जहाँ ईसा की प्रारंभिकशती से १५ वीं शती ई तक शैलेन्द्र - साम्राज्य विद्यमान रहा, उसके केड्डाह प्रान्त (भारतीय स्रोतों में जिसे कटाह द्वीप कहा गया है) मे एक ऐसा ही मृत्फलक लेख मिला है जिस पर महानाविकबुद्धगुप्तस्य अंश उत्कीर्ण है। वर्तमान शोधों से सिद्ध हुआ है कि यह मृत्तेष्टिका - लेख महानाविक बुद्धगुप्त का है जो मुर्शिदाबाद (पश्चिमबंगाल) का रहने वाला था और व्यापार के प्रयोजन से कभी कटाह - द्वीप (मलेशिया) गया था। हिन्दी के प्रख्यातकवि जयशंकर प्रसाद जी ने इसी बुद्धगुप्त को नायक बना कर आकाशदीप नामक कहानी लिखी है (गो कि प्रसाद जी ने बुद्धगुप्त की यात्रा बालीद्वीप में दिखाई है जो इतिहास - सम्मत नहीं है)।

काष्ठफलक अथवा लकड़ी की पाटी पर भी पाण्डुलिपि - लेखन किया गया। इसी प्रकार वृक्षों की छाल पर लेखन का विकास हुआ। भारतवर्ष में हिमालय क्षेत्र में उत्पन्न होने वाला भूर्जवृक्ष इस दृष्टि से सर्वोत्तम रहा है। इस वृक्ष की छाल (त्वक्) ऋतुपरिवर्तन के प्रभाव से

स्वत: वृक्ष से अलग होती रहती है। यह इतनी मजबूत, चिकनी तथा विशाल आकार - प्रकार की होती है कि इसे बड़ी सरलता से कागज के पत्ते के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

भारतवर्ष में चिरकाल से ही तंत्र - मंत्र का लेखन अथवा जन्मलग्नादि का लेखन भोजपत्र पर ही होता रहा है। परन्तु भोजपत्र पर पत्र लिखने का संभवत: प्राचीनतम प्रमाण महाकवि कालिदास का है (ई० पू० द्वितीय शती) विक्रमोर्वशीय नाटक में देवांगना उर्वशी राजा पुरुरवा को अपना प्रेमपत्र भोजपत्र पर ही लिखती है, ऐसा सुस्पष्ट उल्लेख है।

पेपीरस घास (तृणविशेष) से बने कागज को कहते हैं। इस प्रकार का कागज संभवत: सर्वप्रथम बेबिलोनवासियों ने बनाया। मिस्रवासियों को भी पेपीरसनिर्माण की कला ज्ञात थी। ब्रिटिशसंग्रहालय में आज भी १३३ फुट लम्बा पेपीरस सुरक्षित है जो संभवत: २५०० वर्ष ईसापूर्व का है। पेपीरस - विषयक अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों का विवेचन पूर्व पाठ में किया जा चुका है।

चर्मपत्र को भी लेखन का आधार बनाया गया है[1]। इण्डोनेशिया, जिसे प्राचीन काल में सुवर्णद्वीप के नाम से जाना जाता था, में आज भी चर्म ही वहाँ की वायांग कला का प्राणतत्त्व है। इण्डोनेशिया के प्रमुख द्वीपों - जावा तथा बाली - जहाँ भारतीय संस्कृति ईसा की प्रारंभिक शती से १५ वीं शती ई० तक विद्यमान रही, महिषचर्म (कुलित) से ही पौराणिक पात्रों को गढ़ने की कला विकसित हुई जो आज तक यथावत् विद्यमान है। चर्म को मलय भाषा में 'कुलित' कहते हैं अत: चर्मनिर्मित पुतलियों को भी वायांग कुलित कहा जाता है। जावा तथा बाली के डलंग (सूत्रधार) इन्हीं वायांगों के द्वारा रामायण - महाभारत आदि का प्रदर्शन पर्दे पर किया करते थे, जो आज भी इन द्वीपों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

वृक्ष की त्वचा के ही समान कुछ वृक्षों के पत्ते भी आधार - सामग्री के रूप में प्रयुक्त किये गये। ताडवृक्ष का पत्र इस दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी रहा है। भारत के विभिन्न अंचलों में इन्हीं ताडपत्रों पर विशाल साहित्य लिखा गया मिलता है। विश्वप्रसिद्ध सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के सरस्वतीभवन में आज भी एक लाख चौदह हजार ताडपत्रांकित पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं।

भारत के ही अनुकरण पर जावा तथा बाली में भी पाण्डुलिपियों का लेखन ताडपत्र पर हुआ। मलय भाषा में ताड को लोन्तार अथवा रोन्ताल कहते हैं। १ ९८७-८९ में जब मैं बालीद्वीप के उदयन विश्वविद्यालय में भारत - सरकार की ओर से विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त था तब मैने विश्वविद्यालय में १८००० पाण्डुलिपियों का संग्रह देखा एवं उपयोग किया था। इसी प्रकार का ताडपत्रांकित पाण्डुलिपियों का विशाल संग्रह मैंने डचयुगीन बाली की राजधानी सिंगराजा के गेडुंगकृत्य नामक संस्थान में भी देखा। ये सारी पाण्डुलिपियाँ अत्यन्त मूल्यवान् हैं तथा भारतीय ज्ञान - विज्ञान की प्रतिच्छायामात्र हैं। अनेक दुर्लभ ग्रंथ, जो अब भारत में उपलब्ध नहीं है, बालीद्वीप के इन पाण्डुलिपि संग्रहालयों में आज भी सुलभ हैं जिनका अध्ययन किया जाना चाहिये।

इन सबके अनन्तर ही आधुनिक कागज का आविष्कार हो सका है जिसका श्रेय चीनवासियों को दिया जाता है।

कर्गदलेख की परम्परा

अधिकांश विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि कागज का आविष्कार चीनियों ने सन् १०५ ई० में किया। परन्तु इस तथ्य को स्वीकार करना, भारतीय कला - कौशल की अवमानना करने जैसा है। क्योंकि रूई (तूल) की लुगदी से कागज बनाने की विधि भारतीयों ने चीनियों से पूर्व ही खोज ली थी। ईसा से १२७ वर्ष पूर्व सिकन्दर महान् का सेनापति निआर्कस, जो सिकन्दर के लौट जाने के बाद भी कुछ दिन पंजाब में निवास करता रहा था, ने अपने अनुभव लिखे हैं। उसने स्पष्ट लिखा है कि भारतीय लोग रूई कूट कर कागज बनाने में पारंगत थे। निआर्कस के इस अनुभव को एरियन ने अपने ग्रंथ इण्डिया में उद्धृत किया है।

निआर्कस तथा एरियन के ये प्रमाण सिद्ध करते हैं कि कागज का निर्माणसर्वप्रथम भारतीयों ने ही किया, चीनियों ने नहीं।

ईसापूर्व द्वितीय शती. में विद्यमान महाकवि कालिदास अपनी कृतियों में तीन पत्रों का उल्लेख करते हैं

(१) सेनापति पुष्यमित्र का पत्र अपने पुत्र कुमार अग्निमित्र के लिये।

(२) देवांगना उर्वशी का पत्र राजर्षि पुरूरवा के लिये।

(३) शकुन्तला का मदनलेख महाराज दुष्यन्त के लिये।

इन पत्रों में प्रथम पत्र का आलेख (सन्देशाक्षराणि) तो ज्ञात है, परन्तु लेखनाधार अज्ञात है। इसका कोई संकेत नहीं मिलता कि पुष्यमित्र का पत्र भूर्जपत्र पर लिखा था अथवा कागज पर।

दूसरे पत्र में स्पष्टतः लेखनाधार का उल्लेख है। उर्वशी ने अपना पत्र भूर्जपत्र पर लिखा था तथा पत्र के अन्त में अपना हस्ताक्षर (स्वहस्त) भी किया था।

तीसरे पत्र में भी यद्यपि लेखनाधार का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि वह पत्र सरस कमलिनी के पत्ते पर (नुकीले) नाखून से उत्कीर्ण किया गया था (एतस्मिन् सरसकमलिनी पत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु)।
परन्तु यहाँ कालिदास ने एक अद्भुत रहस्योद्घाटन किया है जो शोध की दृष्टि से, विद्वज्जनों के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
शकुन्तला पत्र लिखने की मानसिकता में है। उसने पत्र की लेखनीय सामग्री (संदेशाक्षर) भी सोच ली है। परन्तु लिखे तो कैसे ? न लेखन का आधार उपलब्ध है, न ही उपकरण ! तब सखी उसे परामर्श देती है कि तुम आधार (कागज !) बना लो कमलिनी के पत्ते को और उपकरण (लेखनी) बना लो नाखून को। स्याही (मसि) की तो आवश्यकता ही नहीं। क्योंकि नख से मदनलेख लिखना तो है नहीं, बल्कि उसे पत्ते पर उत्कीर्ण (inscribe) करना है।
यह सन्दर्भ व्यञ्जनया हमें बताता है कि शकुन्तला को अपना पत्र लिखने के लिये लेखनाधार (कागज अथवा भूर्जपत्र) तथा लेखनी - मसी आदि की अपेक्षा थी, परन्तु वे वस्तुएँ आश्रम में उपलब्ध नहीं थीं
शकुन्तला - हला, चिन्तितं मया गीतवस्तु। किन्त्वसन्निहितानि पुनर्लेखनसाधनानि।
अनसूया - एतस्मिन् शुकोदरसुकुमारे कमलिनीपत्रे नखेन निक्षिप्तवर्णं कुरु।
इस पूरे प्रकरण से, परोक्षरीत्या, हम यह अनुमान कर सकते हैं कि शकुन्तला को कर्गद (आधार) एवं लेखनी (उपकरण) की अपेक्षा थी जो उस युग में लेखन में प्रयुक्त होते थे। आश्रम में भूर्जपत्र की अनुपलब्धि को कथमपि स्वीकार नहीं किया जा सकता। अत: 'अंसनिहितानि पुनर्लेखनसाधनानि' का सीधा सा अर्थ यही हो सकता है कि शकुन्तला के पास कागज और लेखनी नहीं थे।
इस प्रकार ईसा पूर्व द्वितीय शती में, भारतीय समाज में कागज पर लिखने की परम्परा पूर्ण प्रचलन में थी, ऐसा मेरा अनुमान है।

लेखनाधार के रूप में कर्गद (कर्गज, कागद) के प्रयोग की संभवत: यह पूर्वसीमा है। ११ वीं शती ई० में उत्पन्न आचार्य हेमचन्द्र - प्रणीत कुमारपालप्रबन्ध में तो कागद का स्पष्ट उल्लेख हुआ है - लेखनाधार के रूप में (एकदा प्रातर्गुरून् साधूंश्च वन्दित्वा लेखकशालाविलोकनाय गतः। लेखकाः कागदपत्रकाणि लिखन्तो दृष्टाः) यह कागद - प्रयोग की अपर सीमा है।
इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रम की प्रथम सहस्राब्दी में भारत में लेखनाधार के रूप में कागज का प्रयोग प्राचुर्येण होने लगा था। फिर भी निश्चयपूर्वक यह बता पाना कठिन है कि कागज पर लिखी गई प्राचीनतम पाण्डुलिपि कौन है ? इस विषय में अभी भी गहन अनुसन्धान की अपेक्षा है। प्राचीन (उपलब्ध) पाण्डुलिपियों के परिचय सन्दर्भ में इस विषय पर समुचित प्राकाश डाला जायेगा।

पाण्डुलिपि ग्रंथ: रचना - प्रक्रिया

प्रत्येक वस्तु की अपनी एक विशिष्ट रचना - प्रक्रिया होती है। एक कुम्हार भी जब पात्रनिर्माण करता है तो विविध प्रक्रियाओं से ही अग्रसर होता है। उदाहरणार्थ पात्र निर्माण योग्य मिट्टी लाना, मिट्टी को भिंगोना, मिट्टी को रौंदकर पात्रनिर्माण योग्य बनाना, मिट्टी से कंकड़ - पत्थर को बाहर निकालना, चक्र की व्यवस्था करना, तदनन्तर चक्के पर मिट्टी का लोंदा रख कर इच्छानुसार पात्र गढ़ना आदि।

ठीक इसी प्रकार पाण्डुलिपियों के लेखन की भी अपनी एक विशिष्ट प्रक्रिया रही है जिसका सांगोपांग विवरण प्राचीन भारतीय साहित्य में मिलता है। लेखन विषयक ग्रंथों में इसका विस्तृत निरूपण किया गया है।
जब आज जैसे ग्रंथों के निर्माण की कला अज्ञात अथवा अविकसित थी तब भी ताडपत्र पर लिखी पाण्डुलिपियों को ऊपर से नीचे तक तार द्वारा गूंथ (बाँध) दिया जाता था तथा ग्रंथ के ऊपर एवं नीचे लकड़ी के पट्टों से जिल्द बना दिये जाते थे। इस रूप में व्यवस्थित हजारों पाण्डुलिपि - ग्रंथ आज भी संग्रहालयों में विद्यमान हैं।
पाण्डुलिपि - निर्माण का प्रथम बिन्दु है उसका लेखक तथा लेखन की भौतिक सामग्री। लेखक के अनेक पर्याय प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। राजकीय लेख (सल्तनतकालीन फरमान) लिखने वाले लेखक को शासनिन् कहा गया है - मत्स्यपुराण में।

मत्स्यपुराण में ही धार्मिक लेख लिखने वाले को धर्मलेखिन् कहा गया है। ये लेख मन्दिरों, जलाशयों, विश्रामालयों आदि के सन्दर्भ में लिखाये जाते थे नरपतियों अथवा धर्मप्राण धनकुबेरों द्वारा।
लेखक को ही कर्णिन्, लिपिक, लिपिकार तथा कालान्तर में कायस्थ भी कहा गया। आज कर्णिक तथा लिपिक शब्द कार्यालय - बाबू (Office - clerk) के अर्थ में रूढ हो गये हैं। कायस्थ शब्द भी जाति - विशेष का परिचायक है जो ब्रिटिश शासनकाल में भूमि - बन्दोबस्त से सम्बद्ध होते थे और जिन्हें पटवारी कहा जाता था। वर्तमान युग में अब उन्हें लेखपाल कहा जाने लगा है।

वस्तुत: लेखक के पर्यायों का अपना पृथक् महत्त्व है। प्रत्येक पर्याय लेखक के व्यक्तित्व के पक्ष - विशेष को उन्मीलित करता है। उदाहरणार्थ लिपिक या लिपिकार शब्द उस प्रवृत्ति का द्योतक है जिसमें लेखक किसी ग्रन्थ की दूसरी प्रति तैयार करता था। इस कार्य में उससे अपेक्षा होती थी कि वह किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं करेगा और सर्वशुद्ध प्रतिलिपि निर्मित करेगा।

अधिकरण न्यायालय अथवा कचहरी को कहते हैं। अतएव आधिकरणिक अथवा कर्णिक शब्द का तात्पर्य था न्यायालयीय लेखन का काम करने वाला व्यक्ति। इसी प्रकार शासनिन् तथा धर्मदेशिन् शब्द भी विशिष्ट लेखकों के लिये प्रयुक्त होते थे क्योंकि इन लेखों की एक विशेष भाषा और पद्धति होती थी जो सामान्य लेखकों की सामर्थ्य से बाहर की चीज़ थी।

सामान्य लेखक राजशासन तथा धर्मशासन नहीं लिख सकता क्योंकि वह उस प्रकार के लेखन का अभ्यस्त नहीं होता था। फलत: उनसे नाना प्रकार की विकृतियाँ होनी संभव थीं। ऐसी विकृत पाण्डुलिपियाँ भयावह भ्रम पैदा कर देती थीं।

पाण्डुलिपि - लेखन की अनेक परम्परायें प्रचलित थीं, इनमें सर्वाधिक महत्त्व था आनुष्ठानिक परम्परा का। भारत में इस परम्परा का विशेष महत्त्व रहा है। इस परम्परा का तात्पर्य था अभीष्ट देवता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से सम्पादित किसी धर्मानुष्ठान में किसी ग्रंथ की प्रतिलिपि बनवा कर, एक निश्चित संख्या में वितरित कराने का संकल्प लेना। प्राय: लोग स्तोत्रग्रंथों की प्रतियाँ बनवा कर वितरित करने का संकल्प लेते थे। यह आनुष्ठानिक परम्परा थी।

इसी प्रकार की अन्यान्य परम्परायें भी थीं। लोग मनौतियाँ मानते थे कि मेरा अमुक कार्य यदि अमुक देवता की कृपा से सम्पन्न हुआ तो मैं अमुक ग्रंथ की इतनी प्रतियाँ सुयोग्य विद्वज्जनों को वितरित करूँगा।

कभी - कभी अपने सम्प्रदाय, सिद्धान्त अथवा मन्तव्य के प्रचार - प्रसार हेतु भी ग्रंथविशेष की प्रतिलिपियाँ लिपिकारों से बनवाई जाती थीं। दूत, द्विज, बन्दी एवं चारण आदि यायावर प्रवृत्ति के लोग एक राज्य से दूसरे राज्य तक संचरण करते, ग्रंथों का भी वितरण करते रहते थे। इस परम्परा का ही परिणाम था कि उत्तर भारत में लिखे गये काव्य ग्रंथों की टीकायें धुर दक्षिण (केरल आदि) में लिखी गईं। यह प्राचीनकाल की संवाद समिति (मीडिया) का एक स्वाभाविक रूप था। राजनैतिक अनबन, वैमनस्य के बावजूद भी दूतों, द्विजों, कवियों, चारणों, कलाजीवियों को प्राय: किसी भी राज्य में आने - जाने की मनाही नहीं होती थी। अत: ये लोग सामाजिक - संवाद स्थापित करते रहते थे।

पाण्डुलिपि के लेखन में कुछ अर्हतायें तो अनिवार्य थीं। सर्वोत्तम गुण होता था पंक्तिबद्धता, मिलित शब्दावली, विरामचिह्नों का समुचित प्रयोग, पृष्ठसंख्या, अक्षरांको की सूची, संशोधनचिह्न का प्रयोग, अंक - लेखन, शब्दों द्वारा अंक की सूचना तथा पुष्पिका आदि का प्रयोग। इन वैशिष्टयों से युक्त पाण्डुलिपि ही सर्वोत्तम मानी जाती थी।

पंक्तिबद्धता का अर्थ है पाण्डुलिपि के प्रत्येक पृष्ठ पर पंक्तियों का समानसंख्या में तथा समान लम्बाई में होना। यदि प्रत्येक पृष्ठ में पंक्तियों की संख्या विषम हो अथवा पंक्तियाँ छोटी बड़ी हों तो पाण्डुलिपि सदोष मानी जाती थी। इन दोषों के कारण व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी पैदा होती थीं। मान लीजिये किसी पाण्डुलिपि में सौ पृष्ठ हैंऔर प्रत्येक पृष्ठ पर आठ पंक्तियाँ हैं तो बड़ी सरलता से ग्रंथ के अन्त में लेखक बता सकता था कि सम्पूर्ण ग्रंथ में ८०० पंक्तियाँ हैं।

पंक्तियों के छोटे हो जाने पर आशंका पैदा हो सकती थी कि यहाँ कुछ अंश छूट तो नहीं गया ? इसलिये समपंक्तिता को भी पाण्डुलिपि का गुण माना गया।

शब्दावली का मिलित होना एक अनिवार्य धर्म था। यह वैशिष्ट्य संस्कृत भाषा के सन्दर्भ में विशेष महत्त्व का था क्योंकि संस्कृत एक यौगिक भाषा है। इसमें शब्द प्राय: अश्लिष्ट (Simple) संश्लिष्ट (Compound) तथा प्रश्लिष्ट (Complex) तीनों ही प्रकार के प्रयुक्त होते हैं। तथापि आधिक्य संश्लिष्ट अथवा समस्त पदों का ही होता है। समस्त - पद आकार में बड़े होते हुए भी प्रकृत्या कई नहीं प्रत्युत एक होते हैं। अत: यदि उन्हें मिलाकर न लिखा जाय तो भाषा ही विकृत हो जायेगी तथा अर्थ का अनर्थ हो जायेगा। उदाहरणार्थ बाणभट्ट की कादम्बरी में दृढमुष्टिनिष्पीडननिष्ठयूत धाराजलबिन्दुदन्तुरेण कृपाणेन में, देखने में तो कुल नौ शब्दों का प्रयोग है। परन्तु सत्य यह है कि इसमें मात्र दो शब्द है क्योंकि दृढ से दन्तुरेण तक सारे शब्द संश्लिष्टकोटिक हैं। समास होने के कारण उन सबको मात्र एक ही शब्द माना जायेगा। अतः इस मिलितशब्दावली को परस्पर मिला कर ही लिखा जाना चाहिये।

संस्कृत भाषा में आज की भारतीय भाषाओं जैसे विरामचिह्नों (जैसे कामा, कोलन, डैश, फुलस्टॉप, इन्वर्टेडकामाज़, विस्मयबोधक, प्रश्नवाचक चिह्न आदि) का तो प्रयोग होता नहीं था। छन्दों में तो यति का निर्देश अक्षर - संख्या से किया जाता थाऔर गद्यात्मक अनुच्छेदों में मात्र अथ एवं इति जैसे शब्दों से प्रारंभ एवं समाप्ति बता दी जाती थी। प्रश्नादि का बोध कराने के लिये भी किम्, कथम्, कस्मात् आदि सर्वनामों का प्रयोग कर वाक्य निर्मित कर लिया जाता था। इस सन्दर्भ में सहायक होता था पाणिनीय व्याकरण। उदाहरणार्थ - कच्चित्

कामप्रवेदने। इस सूत्र का अर्थ है कच्चित् का प्रयोग किसी की आकांक्षा अथवा उसका कुशल - क्षेम जानने के लिये किया जाता है। जैसे - कच्चित् कुशली गुरुस्ते। आप के गुरुदेव सकुशल तो हैं ?

संस्कृत पाण्डुलिपियों तथा अन्यान्य ग्रंथों में भी अंकलेखन की पद्धति प्राय: सांकेतिक थी। उसे सीधे अंकों में न बताकर प्रतीकात्मक शब्दों के ही माध्यम से बताया जाता था। ये प्रतीकात्मक शब्द संख्या की दृष्टि से, उसी अर्थ में रूढ होते थे। जैसे आकाश = शून्य, चन्द्रमा = १, युगल = २, दम्पती = २, शिवनेत्र = ३, काल = ३, दिक् = ४, प्राण = ५, बाण = ५, रस ६, शत्रु = ६, पर्वत अथवा द्वीप = ७, वसु = ८, रस = ९।

संख्या - दृष्ट्या रूढ अन्यान्य शब्द भी प्रतीकरूप में ग्राह्य थे। इस दृष्टि से किया गया अंक - प्रयोग रोचक भी होता था, गोपनीय भी। क्योंकि इसे वामगति (उल्टे क्रम) से लिखा जाता था - अंकानां वामतो गतिः। अत: इस जटिलता से अनभिज्ञ लोग प्रायः भ्रान्त हो जाते थे। उदाहरणार्थ यदि संस्कृत में २००६ ख्रिस्ताब्द कहना है तो इसे यूँ लिखा जायेगा - ख्रिस्ताब्दे रसनभोऽम्ब - रयुगलमिते।

इसका अर्थ होगा ख्रिस्ताब्द रस = ६, नभ = ०, अम्बर = ०, युगल = २ अर्थात् ६००२ में। परन्तु यह अर्थ का अनर्थ होगा। रसनभोऽम्बरयुगल से व्यक्त अंकों को उल्टा पढ़ना होगा तब सही अर्थ आयेगा। ६००२ को उलटने पर २००६ आयेगा। यही अंक लेखक को अभीष्ट है। इसी पद्धति से पाण्डुलिपियों में अंकों का बोध कराया जाता रहा है।

साहित्यिक पाण्डुलिपियों में दो अतिरिक्त वैशिष्ट्य होते थे - प्रारंभ में मंगलाचरण तथा ग्रंथ के अन्त में पुष्पिका। मंगलाचरण का काव्यशास्त्रीय निर्देश यह था कि प्रारंभ में या तो अभीष्ट देवता को नमन अर्पित हो अथवा पाठकों (नाट्य में दर्शकों) को आशी: वितरित किया जाय या फिर सीधे मंगलवाची शब्द का प्रयोग करते हुए कथावस्तु का ही निर्देश प्रारंभ कर दिया जाय। यह मंगलाचरण नाट्यकृतियों में नान्दीपद्य के रूप में आता है। कालिदास शिव की वन्दना करते हैं तो भट्टनारायण विष्णु की और महाराज हर्षदेव भगवान् तथागत की (बौद्धो जिनो पातुव:) प्रत्येक कवि अपने अभीष्ट देवता की वन्दना के लिये स्वतंत्र है।

महाकवि भारवि एवं माघ तो क्रमश: श्री एवं लक्ष्मी सरीखे मंगलवाची शब्दों के साथ सीधे कथावस्तु का ही निर्देश करते हैं - श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीम्आदि। अथवा श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगत् आदि। ग्रंथारंभ की ही भाँति ग्रंथ के अन्त में पुष्पिका होती है जिसमें कवि अपना वंशपरिचय देता है तथा ग्रंथ की समाप्ति घोषित करता है।

पाण्डुलिपि - लेखन के उपकरण एवं प्रकार

पाण्डुलिपि - लेखन के प्रमुख उपकरण हैं - रेखापाटी, डोरा (धागा) हरताल, परकार, सुनहरी एवं रूपहली स्याही, सामान्य काली स्याही तथा चित्ररचना में प्रयोज्य विविध रंग। रेखापाटी का अर्थ है रेखा खींचने के लिये निर्मित काष्ठपट्टिका। यह आधुनिक स्केल जैसा उपकरण होता था। इसके सहारे प्रस्तरशिला, मृत्फलक, भूर्जपत्र, काष्ठफलक, ताडपत्र, वस्त्र अथवा चर्म के ऊपर पहले रेखायें बनायी जाती थीं ताकि पंक्ति सीधी रहे, टेढ़ी - मेढी न हो जाय।

तदनन्तर हरताल के पीले रंग में डोरे को डुबोकर इन्हीं रेखाओं पर रंगीन रेखा खींची जाती थी और इसी रेखापर लेखन किया जाता था।

सुनहरी एवं रूपहली[2] स्याही का प्रयोग भी यथारुचि पाण्डुलिपि - लेखन में किया जाता था - साज - सज्जा तथा महत्त्व की दृष्टि से। सरस्वतीभवन ग्रंथागार (वाराणसी) में ऐसी अनेक बहुमूल्य पाण्डुलिपियाँ हैं जो सुनहरी स्याही में ही लिखी गई हैं।

सचित्र पाण्डुलिपियों में चित्ररचना के लिये अनेक प्रकार के रंगों की भी आवश्यकता होती थी। श्रीमद्भागवत, गीता, गीतगोविन्द तथा ऋतुसंहार आदि की अनेक सचित्र पाण्डुलिपियाँ अभी भी ग्रंथागारों में सुरक्षित हैं।

पाण्डुलिपियों के अनेक प्रकार उपलब्ध होते हैं। ये प्रकार अथवा भेदोपभेद अनेक विभाजक तत्त्वों पर आधारित हैं। ये तत्त्व मुख्यत: चार प्रकार के हैं

(१) पाण्डुलिपि - लेखन की आधारभूत वस्तु की दृष्टि से।

(२) पाण्डुलिपि के आकार - प्रकार की दृष्टि से।

(३) लेखनशैली की दृष्टि से तथा।

(४) रूपविधान की दृष्टि से।

पाण्डुलिपि किस पदार्थ पर लिखी गई है, इस दृष्टि से इसके निम्नरूप उपलब्ध होते हैं – पाषाण[3], मृत्फलक[4], पेपीरस[5], चर्मपत्र[6], ताडपत्र[7], भूर्जपत्र[8], काष्ठफलक आदि।

पाषाण पर भी लिखे गये लेख कई प्रकार के हैं, जैसे पर्वत की चट्टान पर लिखे गये (गिरनार, हाथीगुंफा) शिलापट्टीय, स्तम्भीय तथा देवमूर्ति पर उत्कीर्ण।

स्तम्भीय शिलालेख के भी अनेक उपभेद हैं। जैसे शिलास्तम्भ (अशोक के शिलास्तम्भ, इलाहाबाद की समुद्रगुप्त - प्रशस्ति) जयस्तम्भ (चित्तौड़ दुर्ग में राणा साँगाका जयस्तम्भ) गरुडध्वजस्तम्भ (विदिशा का गरुडध्वज) कीर्तिस्तम्भ।

इसके अतिरिक्त भी साँचीपाटीय, तूलीपाटीय, पाटीय, रेशमीवस्त्रीय आदि कोटि के भी लेख विश्व में उपलब्ध हुए हैं।

पाण्डुलिपि की आकृति के आधार पर इन्हें पाँच प्रकार का माना गया है, उपलब्धि के आधार पर-

(१) गण्डी, (२) कच्छपी, (३) मुष्टी, (४) सम्पुटफलक तथा (५) छेदपाटी। विभिन्न संज्ञाओं से ही पाण्डुलिपियों के आकार का बोध हो जाता है।

लेखनशैली के आधार पर पाण्डुलिपियाँ आठ प्रकार की होती हैं, सचित्र (जो चित्रों के साथ लिखी गई हों) तथा स्वर्णाक्षरादि।

पृष्ठ के रूपविधान के आधार पर भी इन्हें तीन प्रकार का माना गया है। त्रिपाट, पंचपाट तथा शुण्ड।

पाषाण, मृत्तिका, ताम्र, काष्ठ, पेपीरस, चर्मपत्र तथा ताडपत्र - भूर्जपत्र की ही तरह साँचीपात भी एक महत्त्वपूर्ण लेखाधार रहा है। यह अगुरुवृक्ष की छाल से बनाया जाता था। इसकी निर्माण - प्रक्रिया अत्यन्त जटिल एवं श्रमसाध्य होती थी।

डॉ. सत्येन्द्र ने इस सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण दिया है बाणभट्ट - प्रणीत हर्षचरित से जिसके अनुसार कामरूप - नरेश भास्कर वर्मा ने कान्यकुब्ज -नरेश हर्षदेव को कुछ पुस्तकें उपहार में भेजी थीं जो अगुरु - वल्कल (अर्थात् साँचीपात के कागज) पर लिखी हुई थीं।

अगरुबल्कलकल्पितसञ्चयानि च सुभाषितभाञ्जि पुस्तकानि....।

तूलीपाटीय लेखाधार भी लकड़ी के गूदे (Chime) से ही बनाया जाता था। यह प्राय: सफेद, भूरा तथा लाल - तीन रंगों में होता था। सफेद तूलीपात के लिये महाई, भूरे के लिये जामुन तथा लाल के लिये भी किसी वृक्ष विशेष का गूदा प्रयुक्त किया जाता था।

पहले बल्क को विधिवत् कूटने के बाद इसे उबालते हैं जिससे इसके रेशे पृथक् हो जाते हैं तथा सारी गन्दगी छंट जाती है। तदनन्तर इस उबले गूदे (Pulp) को विविध पर्णाकारों में फैला देते हैं। सूख कर यही कागज बन जाता है। आसाम तथा पूर्वोत्तर भारतीय गोम्पाओं (बौद्धमठों) में तूलीपाटीय कागज बनाने की परम्परा मध्यकाल से ही प्रचलित रही है। तूलीपाटीय तूल अथवा रूई से भी बने कागज को कहते थे[9]।

पटीय लेखाधार का अर्थ है कपड़े को कागज के रूप में प्रयुक्त करना। कपड़े के छिद्रों को भरने के लिये आटा, चावल का मॉड अथवा पिघलामोम प्रयुक्त किया जाता है। सूखने के बाद इसे अकीक, शंख या कसौटी के पत्थर से घोंट कर चिकना बना लेते हैं तदनन्तर इस पर यंत्र - मंत्र - लेखन करते हैं।

रेशमवस्त्रीय लेखाधार का उल्लेख, डॉ ० सत्येन्द्र के प्रमाणानुसार, अरबी यात्री अलबरूनी ने अपनी भारतयात्रा - विवरण में किया है। वह नगरकोट दुर्ग की एक राजवंशावली से परिचित था जो रेशमी वस्त्र पर लिखी गई थी और यह वंशावली काबुल के शाहीवंशीय हिन्दू नरपतियों की थी।

डॉ० व्युहलर ने भी जैसलमेर के वृहद् ग्रन्थागार में रेशमीवस्त्र पर लिखी एक जैन - सूत्रों की सूची को देखने का उल्लेख अपने विवरण में किया है (सविस्तर द्रष्टव्य - पाण्डुलिपिविज्ञान, पृ० १५४-५)।

इस प्रकार, अवसर, आवश्यकता, उपलब्धि तथा अन्वेषण के आधार पर मनुष्य ने समय - समय पर विविध लेखाधारों के ऊपर लिपिलेख लिखे हैं। जैसे - जैसे लेखनकला के प्रति रुझान बढ़ी, वैसे ही वैसे मानव ने उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर साधन प्राप्त करने का यत्न किया, जिसका प्रमाण है गुहालेख के युग से संगणकयुग तक की उसकी लिपिलेखन - यात्रा।

पाण्डुलिपि की आकृत्याधारित पञ्चविधता

आकृति के आधार पर, अनेक जैनग्रंथों में, पाण्डुलिपि के पाँच भेद गिनाये गये हैंगण्डी, कच्छपी, मुष्टी, सम्पुटफलक तथा छेदपाटी[10]।

जो पुस्तक मोटाई तथा चौड़ाई में समान हो तथा लम्बी हो उसे गण्डी कहते हैं। अधिकांश प्राचीन ताडपत्रांकित पाण्डुलिपियाँ गण्डी आकार की ही है।

कच्छपी पाण्डुलिपि उसे कहते हैं जो कच्छपाकृति हो, अर्थात् मध्यभाग में चौड़ी तथा प्रान्तभागों में संकीर्ण। इसके प्रान्तभाग या तो त्रिकोण होते हैं अथवा वर्तुलाकार।

मुष्टी को लोकभाषा में हम 'गुटका' कह सकते हैं। ऐसी पाण्डुलिपि जो मुष्टिग्राह्य हो, मुष्टी कही जाती है। इस आकार की कृति सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि० वि० वाराणसी के सरस्वतीभवन ग्रंथागार में विद्यमान है।

डॉ० सत्येन्द्र जी ने हैदराबाद के सालारजंग ग्रंथागार में भी एक इञ्च परिमाणवाली पुस्तक के होने की बात लिखी है।

सम्पुटफलक उस पाण्डुलिपि को कहते हैं जो काष्ठपट्टिकाओं (फलकों) से सम्पुटित (बन्द) हो। कागज पर लिखी प्राचीन पाण्डुलिपियाँ अथवा पत्राकार पुराण प्राय: ऊपर तथा नीचे सुरक्षापरक काष्ठफलकों से युक्त होते हैं।

छेदपाटी ग्रंथ उसे कहते हैं जिसकी मोटाई (पृष्ठों की कमी के कारण) अत्यल्प होती है।

लेखनशैली के आधार पर पाण्डुलिपियों की अष्टविधता

पाण्डुलिपियों के पृष्ठ का रूपविधान क्या है ? पुस्तक स - चित्र है या नहीं ? पुस्तक सामान्य स्याही (काली) में ही है अथवा रौप्य / स्वर्ण स्याही में ? लिप्यक्षर स्थूल हैं या सूक्ष्म ? इन आधारों पर पाण्डुलिपियों के आठ भेदों का उल्लेख डॉ. सत्येन्द्र जी ने किया है जो इस प्रकार हैं

(१) त्रिपाट या त्रिपाठ।

(२) पंचपाट या पंचपाठ।

(३) शुण्डाकार।

(४) सचित्र पुस्तका

(५) स्वर्णाक्षर - लिपि।

(६) रजताक्षर - लिपि।

(७) सूक्ष्माक्षर - लिपि।

(८) स्थूलाक्षर - लिपि।

इनका विशेष विवरण अनपेक्षित है क्योंकि नामोल्लेख से ही वैशिष्ट्य सुस्पष्ट होजाता है। हाँ, त्रिपाटादि के सन्दर्भ में थोड़े स्पष्टीकरण की आवश्यकता है, जिसे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पृष्ठ - रूपविधान के आधार पर पाण्डुलिपि की त्रिविधता

सामान्यतः पाण्डुलिपियों के पृष्ठ एक ही शैली में लिखे जाते हैं। परन्तु कभी - कभी विकसित सौन्दर्यचेतना वाले अथवा नागर प्रकृति के प्रतिलिपिकार पृष्ठों के लेखन में भी शैली - विशेष (Design) अपनाते हैं तो पाण्डुलिपि विशिष्ट बन जाती है। पृष्ठ के रूपविधान के अनुसार पाण्डुलिपि तीन प्रकार की होतीहै - त्रिपाट, पंचपाट तथा शुण्डाकार।

त्रिपाट या त्रिपाठ शैली उसे कहते हैं जब पाण्डुलिपि का मूल अंश (Text) मोटे अक्षरों में बीचोबीच लिखा जाय तथा उसकी टीका, महीन अक्षरों में ऊपर तथा नीचे लिखी जाय। इस पद्धति से लिखने पर पृष्ठ तीन पाटों में विभक्त दीखता है।

पञ्चपाट का अर्थ है पञ्चधा विभक्त लेखन। जब मूल श्लोक बीच में तथा टीका ऊपर - नीचे लिखने के साथ ही साथ, दोनो प्रान्तभागों (हाशिये) पर भी लेखन किया जाय तो पृष्ठ पाँच पाटों में विभक्त दीखता है। इसे पंचपाट कहते हैं।

शुण्डाकार का अर्थ है हाथी के सूंड (शुण्डादण्ड) की आकृति में लिखना। इसमें पंक्तियाँ क्षीयमाण क्रम में लिखी जाती हैं। सबसे ऊपर की पंक्ति पूरी लम्बाई में, बाद वाली उससे छोटी, और बाद वाली पंक्तियाँ क्रमश: उससे भी छोटी। इस पद्धति में लिखने से लिपिलेख हाथी के शुण्डादण्ड जैसा दीखता है।

कुण्डलाकार पाण्डुलिपियाँ

जैसा पूर्व में बताया जा चुका है कि बेबीलोनियावासी तथा मिस्रवासी पेपीरस पर लिखे लेखों को कुण्डलित आकार में (Scrolls) सुरक्षित रखते थे। भारतवर्ष में भी पाण्डुलिपियों अथवा ग्रंथों की कुण्डलित प्रतियाँ मिलती हैं, परन्तु अत्यल्प मात्रा में। उसका कारण यह है कि भारत में प्राचीन लेखन पाषाण, धातु, काष्ठ एवं मृत्तिका के अनन्तर ताडपत्र एवं भूर्जपत्र पर ही अधिक हुआ और इन दोनों को ही कुण्डलित करना खतरे से खाली नहीं था। ये टूट सकते थे लपेटने पर। अत: इनकी पाण्डुलिपियाँ पत्राकार ही सुरक्षित रखी गईं।

परन्त कागज का आविष्कार हो जाने के बाद भारत में भी खरीतों (Scrolls) की परम्परा का प्रचलन हो गया। विशेषत: ज्योतिर्विद लोग जातकों की लग्नपत्रिकायें तथा कुण्डलियाँ, एक में ही जुड़ी लम्बी पत्रलिपियों पर बनाने लगे। अब तो कुण्डली बनाने की पंत्रिकायें भी

मुद्रित हो गई हैं । जन्मचक्रादि पहले से ही बने हैं, बस उसे भरना ही भरना रहता है । तथापि आस्थावान् तथा परम्परावादी लोग अभी भी खरीते वाले कागज पर ही अपनी कुण्डली बनवाते हैं।

कुण्डलित अथवा वलयित इन खरीतों का सर्वाधिक प्रयोग मिस्र में हुआ फराह नरपतियों के शासनकाल में । भारत में लिखा कुण्डलिताकार भागवतपुराण ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित हैं । बड़ौदा के प्राच्यविद्याभवन में भी एक लाख श्लोकों का महाभारत (२२८ फीट लम्बी तथा साढ़े पाँच फिट चौड़ी कुण्डली पर अंकित) सुरक्षित है । ये दोनों सूचनायें डॉ ० सत्येन्द्र ने अपने पाण्डुलिपिविज्ञान में दी हैं (पृ० १५ ९)।

सन्दर्भ :-

1. चर्मपत्र (Parchment) के विषय में डॉ. सत्येन्द्र ने ‘पाण्डुलिपिविज्ञान’ (पृ०१६) पर एक महत्त्वपूर्ण सूचना दी है । जब पर्गेमम के विश्वविद्यालय का विकास चरमशिखर पर पहुँच गयातब अलेक्जेण्ड्रिया के लोगों को चिन्ता हो गई कि हमारे ग्रंथागार का महत्त्व कहीं कम न हो जाय । फलतः (ईर्ष्यावश) उन्होंने पर्गेमम को पेपीरस देना बन्द कर दिया । तब पर्गेमम में लेखन - आधार के रूप में चर्मपत्र (Parchment) का अविष्कार किया गया । परन्तु यह चर्मपत्र पेपीरस की तरह वर्तुलाकार लपेटकर खरीते (Scrolls) के रूप में नहीं रखा जा सकता था, ठोस होने के कारण । अत: उन्हें पृष्ठानुसार व्यवस्थित किया गया तथा पन्नों की एक साथ (आधुनिक पुस्तक की तरह) सिलाई कर दी गई । चर्मपत्रों का वही स्यूत रूप कोडेक्स (Codex) के नाम से विख्यात हुआ जो आधुनिक जिल्दबन्द किताब का पूर्वरूप माना जाता है।
2. स्याही (मसि, मसी, मषी अथवा मशि) के सन्दर्भ में अत्यन्त विविध एवं विस्तृत सामग्री । द्रष्टव्य - पाण्डुलिपिविज्ञान - डॉ० सत्येन्द्र, पृ ० ५२-६०
3. भारत में प्राचीनतम पाषाण शिलालेख सम्राट अशोक के हैं जो अफगानिस्तान से मन्दसौर तक व्याप्त हैं । इनका समय ई० पू० चौथी शती है।
4. ‘महानाविकबुद्धगुप्तस्य’ आलेखयुक्त मृत्फलक (ई० पू० प्रथमशती) मलेशिया के केड्डाह कस्बे से मिला जिसे पुराणों में कटाह कहा गया है । यह कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है ।
5. ब्रिटिश संग्रहालय में १३३ फुट लम्बा पेपीरस खरीते (Scrolls) के रूप में सुरक्षित है जो ई० पू० २५०० का है तथा मिस्रदेश का लिखा हुआ है।
6. जैसलमेर के एक ग्रंथागार में कोशचर्मपत्र सुरक्षित । पीटर्सवर्ग संग्रहालय (रूस) में काशुगर से प्राप्त चर्मपत्र सुरक्षित जिस पर भारतीय लिपि में लेख अंकित है ।
7. नेपाल में स्कन्दपुराण की ताडपत्रीय प्रति सुरक्षित । समय ई० सातवीं शती ।
8. खरोष्ठी लिपि में अंकित धम्मपद जो खोतान से प्राप्त हुई है । समय - दूसरी तीसरी शती ईसवी ।
9. तूल तो संस्कृत शब्द है जिसे कार्पास अथवा सामान्य भाषा में रूई भी कहते हैं । रूई को भी कूट कर कागज बनाने की विधि भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल में प्रचलित थी । ईसा से १२७ वर्ष पूर्व जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण कियातो उसके सेनापति निआर्कस ने अपना अनुभव लिखा कि भारतीय लोग रूई से कागज बनाते हैं । निआर्कस कुछ दिन पंजाब में रहा था तथा अपने अनुभवों को शब्दबद्ध भी किया था । जिआर्कस के उक्त ' अनुभव को एरिअन ने अपनी पुस्तक ' इण्डिया ' में उद्धृत किया है । अत: यह मानना कि, सर्वप्रथम चीनियों ने सन् १०५ में कागज बनाया गलत सिद्ध हो जाता है । यह विवरण: डॉ. सत्येन्द्र जी ने प्रस्तुत किया है । पाण्डुलिपिविज्ञान, पृ० १५०
10. गंडी कच्छवि मुट्ठी संपुडफलए छिवाडीय । एयं प्रत्ययपणयं वक्खाण मिण भवेतस्य ॥- दशवैकालिक पर हरिभद्री टीका ।